अध्याय – 5

सामाजिक समस्याएं

i) स्त्री स्वाधीनता– पराधीनता का प्रश्न

ii) शिक्षा और संस्कृति से संबंधित सवाल

iii) जाति–पाति और दलित प्रश्न

स्त्री स्वाधीनता– पराधीनता का प्रश्न–शरतचन्द्र

शरतचन्द्र ने अपने समय में समाज को सामंती नियमों से घिरा हुआ पाया। सारी रूढ़ प्रवृत्तियां समाज को पतन की ओर ले जा रही थीं। जातिवाद, अंधविश्वास, स्त्री–पुरुष भेद–भाव आदि सभी अपना प्रभाव बिखेर रहे थे। सामंती समाज में नारी एक बंदिनी मात्र थी, खुले आसमान में सांस लेना तो दूर वह पारिवारिक जीवन में भी विशृंखलित होकर बिखर गयी थी। पर्दा प्रथा, और अशिक्षा ने तो नारियों के मानसिक विकास में भी रोक लगा दी।

जब शरतचन्द्र ने बांगला साहित्य में पदार्पण किया, तब यूरोप में नारी, अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत थी। नव–जागरण की चेतना वहां की नारियों पर साफ देखी जा रही थी। कैथलिक चर्च के विरुद्ध प्रोटेस्टेन्ट आंदोलन जोर पकड़ चुका था। नारी–मुक्ति संघर्ष पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। निश्चित ही यहां के आंदोलनों से भारत भी प्रेरणा ले रहा था। नवजागरण की चेतना से प्रभावित एक वर्ग संघर्षरत था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बंकिमचन्द्र, राममोहनराय, माइकेल मधुसूदन आदि नामों का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है। बंगाल के नवजागरण से यहां सदियों से दबी–कुचली गयी नारियों को मुक्ति संघर्ष के लिए बल मिला। राममोहन राय ने पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर 'ब्रह्म समाज' की नींव रखी। स्वयं राममोहन रॉय बाल–विवाह, बेमेल विवाह, बहु विवाह आदि के प्रबल विरोधी तथा विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि के प्रबल समर्थक थे। बंगाल के शिक्षित नवयुवक भी अब थोड़े–थोड़े जाग्रत हो रहे थे और नारी–शिक्षा की आवश्यकता को समझ रहे थे।

गांधी जी के आगमन ने तो समाज में एक हलचल मचा दी। गांधी जी ने राष्ट्र–मुक्ति के साथ–साथ सामाजिक मुक्ति की आवश्यकता को भी समझा। उन्होंने आंदोलन को एक संगठित रूप प्रदान किया। छोटे–छोटे अधिकारों के लिए संघर्षरत आंदोलनकारियों को उन्होंने संगठित कर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से जोड़ दिया और स्वाधीनता आंदोलन को एक व्यापक अर्थ प्रदान किया।

शरतचन्द्र इसी शृंखला की एक कड़ी है। उन्होंने नारी–मुक्ति संघर्ष को विस्तृत रूप प्रदान किया तथा उसे सही मायने में सामाजिक मुक्ति के साथ–साथ

राष्ट्रीयता के प्रश्नों से जोड़कर देखा। शरतचन्द्र का साफ कहना था, जिस चेष्टा में, जिस आयोजन में देश की नारियां सम्मिलित नहीं हैं, उनकी सहानुभूति नहीं है, वह स्वाधीनता बेकार है। "औरतों को हमने जो केवल औरत बनाकर ही रखा है, मनुष्य नहीं बनने दिया, उसका प्रायश्चित स्वराज्य के पहले देश को करना ही चाहिए। अत्यंत स्वार्थ की खातिर जिस देश ने जिस दिन से केवल उसके सतीत्व को ही बड़ा करके देखा है, उसके मनुष्यत्व का कोई ख्याल नहीं किया, उसे उसका देना पहले चुका देना ही होगा।"[1] पतिता, वेश्या तथा विधवाओं के साथ शरतचन्द्र के मन में हमेशा संवेदनात्मक सागर लहराता था। कथनी के साथ–साथ अपनी लेखनी में भी शरतचन्द्र इन पतिताओं के साथ खड़े नजर आते हैं। वे कहते हैं– "मैं व्यक्तिगत रूप से ऐसे चरित्रों के संपर्क में आया हूं और इसी कारण अत्यंत तीव्रता के साथ यह अनुभव किया है कि वेश्याएं समाज की सबसे अधिक शोषित और सबसे अधिक अत्याचार पीड़ित नारियां हैं।... उनके अंतर के इस मूल विद्रोह को वाणी देने का निश्चय मैं बहुत पहले कर चुका था और अपने इस मिशन को कार्यान्वित करने में मैंने कोई बात गुप्त नहीं रखी।"[2] शरतचन्द्र ने अपने व्यावहारिक जीवन में कभी भी पतित नारी को हेय दृष्टि से नहीं देखा। इस मामले में उनका व्यक्तिगत जीवन और साहित्यिक जीवन मानों एक हो गये हों। शरतचन्द्र की नारी पतिता स्वरुप में भी पवित्रता बनाए रखती है। हम उनके समक्ष आम औरतों को ईर्ष्या करते हुए पाते हैं। "विधवा होकर भी पल्ली समाज की रमा, चरित्रहीन की सावित्री व किरणमयी, 'बड़ी दीदी' की माधवी क्रमशः रमेश, सतीश व सुरेन्द्र के प्रति आशक्त होती हैं, पर अपनी प्रेमाशक्ति का मांगलीकरण कर लेती हैं। उन्हें शरत की सहानुभूति है परन्तु विवाह की अनुमति नहीं, क्योंकि वे (शरतचन्द्र) चाहते थे क्रांति का बीज स्वयं नारी मन से अंकुरित होकर स्वीकृत होना चाहिए ऊपरी सुधार या बलात् विवाह उतना ही पीड़ादायक सिद्ध हो सकता है, जितना विवाह निषेध।[3] शरतचन्द्र भी विधवा विवाह की परिणति तक न जा पाने से काफी दुखी थे। उन्होंने कहा है, "कितने ही बड़े और सुंदर जीवन समाज में केवल विधवा–विवाह नहीं होने के कारण ही सदा के लिए व्यर्थ व निष्फल हो गये हैं।"[4]

शरतचन्द्र ने अपने नारी पात्रों में अद्‌भुत चेतना का संचरण कर दिया है। उनके नारी पात्र, पुरुष पात्र से तर्क करते हैं और सफलतापूर्वक परास्त भी करते है।

शरतचन्द्र के क्रांतिकारी सामाजिक उपन्यास 'शेष प्रश्न' की कमल कहती है– ''इसी तरह संसार में न्याय चिरकाल से विडम्बित होता आ रहा है, नारी असम्मानित होती रही हैं और पुरुष का चित्त संकीर्ण और कुलषित होता गया है। इसी से इस झूठे मामले का आज तक फैसला नहीं हुआ। अविचार से सिर्फ एक ही पक्ष क्षतिग्रस्त नहीं होता अजित बाबू दोनों पक्षों का सर्वनाश होता है।''[5]

वेश्याओं के प्रति शरतचन्द्र की विशेष सहानुभूति थी। वे कहते हैं कि ''अनेक दुखों से ही नारी अपना धर्म नष्ट करने के लिए तैयार होती है और इसलिए होती है वह पर पुरुष का रूप नहीं और किसी बीभत्स प्रवृत्ति का लोभ भी नहीं। जब वे अपनी इतनी बड़ी वस्तु को नष्ट करती है तो बाहर आकर किसी आश्चर्य वस्तु को पाने के लोभ से नहीं किसी बात से अपने को मुक्त करने के लिए ही इस दुख को सिर उठा लेती है।''[6] 'देवदास' की 'चन्द्रमुखी' के द्वारा वेश्या जीवन की घुटन को शरतचन्द्र ने उद्‌घाटित किया है।

शरतचन्द्र की संवेदना विधवाओं के प्रति भी व्यक्त हुई है। विधवाओं की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं ''राजा ने अपना काम कर डाला, लेकिन अब समाज रक्षकों का काम बढ़ गया। उन लोगों ने सोचा कि ऐसी आफत के समय चुपचाप बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। वे लोग कहने लगे कि म्लेच्छों ने हमारे धर्म पर ध्यान नहीं दिया और कानून बना दिया। लेकिन हम लोग भी सहज में नहीं छोड़ेंगे। हम यहीं बैठे–बैठे ही अपनी विधवाओं को 'देवी' बना डालेंगे। इसके बाद शास्त्रों में से ऐसे बहुत से पुराने श्लोक ढूंढ निकाले गये जिनका इतने दिनों तक कभी कोई व्यवहार नहीं हुआ था और जो न जाने कहां पड़े हुए थे और उन्हीं श्लोकों का आधार लेकर लोकाचार की दुहाई देकर और सुनीति की पुकार मचाकर जितने प्रकार की कठोरताओं की कल्पना की जा सकती थी वे सभी कठोरताएं संघ ने विधवाओं के सिर पर लादकर उन्हें नित्य थोड़ा–थोड़ा करके 'देवी' बनाने का काम शुरू कर दिया। वह आभूषण आदि न पहनें, वह दिन रात में केवल एक बार खायें, वह हड्डियां तोड़ डालने वाला परिश्रम करें, थान में से फाड़ी हुई और बिना किनारे की धोती पहनें क्योंकि वह देवी जो ठहरी।''[7]

शरतचन्द्र ने विधवाओं की इच्छाओं और आकांक्षाओं को वाणी दी है। उन्होंने विधवाओं के प्रेम को भी स्वीकारोक्ति दी है। 'चरित्रहीन' की 'सावित्री' कहती है ''मैं

विधवा हूं, मुझ पर किसी का न्यायसंगत दावा नहीं है और तुम भी अविवाहित हो, तुम्हारे हृदय के ऊपर किसी का अधिकार नहीं है, अतएव यह बात तो समझना कठिन नहीं है कि मुझे प्यार करके तुमने कुछ अन्याय नहीं किया।''[8] 'पल्ली समाज' की 'रमा' पर टिप्पणी करते हुए शरतचन्द्र लिखते हैं– ''विधवा रमा ने अपने बाल बन्धु रमेश को प्यार किया था। इसके लिए मुझे बहुत झिड़कियां और तिरस्कार सहना पड़ा है। एक विशिष्ट आलोचक ने ऐसा अभियोग भी किया था कि इतनी दुर्नीति को प्रश्रय देने से गांव में फिर कोई विधवा नहीं रहेगी।''[9] इस प्रश्न का उत्तर भी लेखक ने स्वयं ही दे दिया है। ''इसका प्रश्रय देने से भला होगा या बुरा, हिन्दू समाज स्वर्ग में जायेगा या रसातल में, इस मीमांसा का भार मेरे ऊपर नहीं है। रमा जैसी नारी और रमेश जैसे पुरुष किसी भी काल में और किसी भी समाज में दल के दल नहीं जनमते। दोनों के सम्मिलित पवित्र जीवन की महिमा की कल्पना करना कठिन नहीं है। किन्तु हिन्दू समाज में इस समाधान के लिए जगह न थी।''[10]

'प्रेम' नारी की प्रवृत्ति है। फिर चाहे वह प्रेम वैध हो या अवैध। शरतचन्द्र ने दोनों प्रकार के प्रेम पर भावुकतावादी दृष्टि से विचार किया है। 'नारी' की तमाम प्रवृत्तियों में से एक 'प्रेम' को शरतचन्द्र ने स्वाभाविक माना है। आकर्षण किसी के प्रति हृदय में कभी भी जाग्रत हो सकता है और यही प्रेम में परिणत भी हो सकता है। 'देवदास' की 'पार्वती' शादीशुदा महिला है। वह देवदास की तरफ आकर्षित होती चली जाती है। समाज ऐसे प्रेम को कुछ भी कहे शरतचन्द्र पार्वती का चित्रण एक 'प्रेयसी' के रूप में करते हैं। अवैध प्रेम का तर्कपूर्ण समर्थन करने वाली 'कमल' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शरतचन्द्र को नारी–पीड़ा, उसकी दयनीय अवस्था, तथा उन पर हो रहे शोषण का इल्म था। शरतचन्द्र ने यथा स्थान इसका विरोध किया, कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं सांकेतिक रूप का सहारा लेकर। शरतचन्द्र नारी के अधिकारों की बात करते हैं, किन्तु अपने उपन्यासों में शरतचन्द्र नवीन समाज का निर्माण नहीं करते हैं। उनके नारी पात्र समाज के बंधनों को तोड़ते जरूर हैं, किन्तु एक नवीन समाज के निर्माण की साहस नहीं जुटा पाते हैं। 'शेषप्रश्न' की 'कमल' सामाजिक संस्थाओं की आलोचना अवश्य करती है किन्तु उन्हें तोड़ने की क्षमता नहीं जुटा पाती है। एक प्रगतिशील लेखक की दृष्टि से हम इसे शरतचन्द्र की सीमा कह सकते हैं।

स्त्री स्वाधीनता पराधीनता का प्रश्न– प्रेमचंद

पश्चिमी शिक्षा के प्रचार–प्रसार ने भारतीय स्त्रियों के विचारों को काफी आंदोलित किया। उनमें दृढ़ता के साथ डटे रहने की प्रवृत्ति बढ़ी। ''नारी समाज में होने वाले इस जागरण का परिणाम यह हुआ कि एक प्रबल जनमत नारियों के पक्ष में उठ खड़ा हुआ। जो ब्रिटिश सरकार भारतीय प्रथा की समाज और धर्म संस्था को प्रभावित करने वाले किसी कानून के बनाने में रुचि नहीं रखती थी, उन्हें भी इस प्रबल जनमत की उपेक्षा करने का साहस नहीं हुआ, परिणाम हुआ कि एसेम्बली में समय–समय पर ऐसे कानून पास हुए जिनके कारण नारी–वर्ग को न्यायोचित अधिकार प्राप्त करने की सुविधा हुई। ऐसे कानूनों में हिन्दू ला–ऑफ इनहेरिटेन्स अमेन्डमेंट एक्ट सन् 1929 और चाइल्ड मैरेज रिस्ट्रीक्सन ऐक्ट 1929 विशेष रूप से ध्यातव्य हैं। सन् 1929 के उत्तराधिकार विषयक कानून की विशेषता इस अर्थ में है कि अब पारिवारिक संपत्ति में नतिनी, बहन और बहन की संतान को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। इन्हीं दिनों विवाह की आयु बढ़ाने के संबंध में कानून बनाने के लिए भी आंदोलन खड़ा हुआ था। बाल–विवाह निषेध के विषय में सरकार ने इसी आंदोलन पर कानून बनाया। नारी को अपने परिवार में एक सम्मान पूर्ण स्थान प्राप्त हो और उसे संपत्ति में भाग मिले इस विषय में भी आंदोलन चलता रहा। अंत में सन् 1937 में हिन्दू–विमेन्स राइट टू प्रोपर्टी एक्ट पास हुआ। इससे ही आगे बढ़कर तो आजादी के बाद हिन्दू कोडबिल उपस्थित हुआ। नारी के अधिकार की संरक्षा करने के लिए सन् 1946 में हिन्दू विमेन्स राइट टु सेपरेट मेन्टिनेन्स एंड रेसिडेन्ट ऐक्ट भी पारित हुआ था। हिन्दू वैवाहिक संस्था अंतर्जातीय विवाह के विषय में उदार नहीं थी। नई विचार चेतना के फैलने के बाद अंतर्जातीय विवाह की कानूनी स्वीकृति की उपेक्षा दृष्टिगत हुई।''[11]

निश्चित रूप से प्रेमचंद पर इन सभी आंदोलनों का व्यापक प्रभाव पड़ा था। वह एक सचेत लेखक थे, उनकी निगाह समस्याओं से घिरी भारतीय स्त्रियों पर थी। प्रेमचंद ने नारी संबंधी पुरातन घिसी–पिटी वासनात्मक धारणा को न केवल चुनौती दी, बल्कि उन्हें वहां से निकालकर विराट आदर्शवादी धरातल पर प्रस्तुत किया, जहां

पाठक नारी की महानता, उदारता आदि के दर्शन कर सके। प्रेमचंद पूर्व उपन्यासकार नारी के कामुक वर्णन में ही रमे रहे, प्रेमचंद ने नारी को विराट आदर्शवादी धरातल पर प्रस्तुत कर नारी को सार्थकता प्रदान की। उन्हें मूर्त रूपाकार प्रदान किया। प्रेमचंद के साहित्य में हमें ऐसी नारी से रू–ब–रू होने का मौका मिलता है जो पुरुषों को न केवल चुनौती देती है, बल्कि चारित्रिक विराटता में वह पुरुषों से आगे दिखाई देती है। 'कर्मभूमि' की 'सुखदा', 'प्रेमाश्रम' की विद्यादेवी, 'कायाकल्प' की मनोरमा, 'प्रतिज्ञा' की 'पूर्णा' 'गोदान की 'धनिया' आदि ऐसे पात्रों में वह सामर्थ्य है।

नारी के संबंध में प्रेमचंद के विचार काफी सुलझे हुए हैं। उनके साहित्य में चित्रित नारियों के विविध रूप इस बात के गवाह हैं। इन्द्रनाथ मदान को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं– "मेरी नारी का आदर्श एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता पर केन्द्रित होना है। त्याग बिना फल की आशा के हो, और पवित्रता सीजर की पत्नी की भांति हो, जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।"[12]

प्रेमचंद ने नारी को युगीन संदर्भों से जोड़कर देखा है। समाज में नारी की स्थिति दिनों–दिन दयनीय होती चली जा रही थी। उनका जीवन जहन्नुम बन चुका था। रूढ़िवादी समाज ने उन्हें चारों ओर से जकड़ रखा था। ऐसी परिस्थिति में एक सचेत लेखक का हृदय क्रंदन कर उठना स्वाभाविक ही था। अपने एक लेख में वे विधवाओं के गुजारे पर लिखते हैं– "इस बिल के पास होने में किसी भी तरह की रुकावटें न डालें क्योंकि समाज में विधवा की दशा अति दयनीय है। उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उनसे तंग आकर वे या तो पतित हो जाती हैं या आत्महत्या कर लेती हैं। अतः संपत्ति का अधिकार मिलने पर उन्हें भी थोडा सम्मान मिल जायेगा।"[13] लगभग ऐसी ही बातें वह अपने एक और लेख 'नारी जाति के अधिकार' में करते हैं। "पुरुष की संपत्ति पर पत्नी का अधिकार हो, वह उसे रहन, वस्त्र जो कुछ चाहे कर सके। पिता की संपत्ति पर पुत्रों और पुत्रियों का समान अधिकार हो।"[14]

विवाह संस्था एवं उससे जुड़े नियम इस समाज में नारी समस्याओं की जड़ हैं। प्रेमचंद कहते हैं– "एक विवाह का नियम स्त्री–पुरुष दोनों के लिए समान रूप से लागू हो। कोई पुरुष पत्नी के जीवन काल में दूसरा विवाह न कर सके।"[15]

इसलिए प्रेमचंद 'तलाक बिल' के पक्ष में भी खड़े होते हैं। "हिन्दू विवाह का आदर्श ऊंचा है। विवाह और तलाक दोनों परस्पर विरोधी बाते हैं। लेकिन इस आदर्श का मूल्य बहुत कम हो जाता है, जब इसके पालन का भार केवल स्त्रियों पर रखा जाता है।.... ऐसे हर कानून का स्वागत करना चाहिए जिसका उद्देश्य सामाजिक अत्याचारों को दूर करना है।[16] प्रेमचंद के अनुसार यह कानून दोनों (स्त्री–पुरुष) के लिए ही समान हो और स्त्री की तलाक के समय पुरुष की आधी संपत्ति पाये और अगर मौरूसी जायदाद हो तो उसका एक अंश।[17]

प्रेमचंद ने पर्दा प्रथा का भी विरोध किया है। उन्होंने 'पर्दा थोड़े दिन का मेहमान' शीर्षक लेख में लिखा है कि "पर्दा से समाज का ही अहित नहीं होता है। प्रकाश वाले बंद घरों में स्त्रियां क्षय रोग का शिकार हो जाती हैं। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन से इस वर्ष पर्दा टूट गया। कांग्रेस ने माताओं और बहनों को राष्ट्र के कर्म क्षेत्र में ला खड़ा किया। अब युवक–युवतियां साथ–साथ पढ़ते हैं, बहसें करते हैं और सामाजिक उत्सवों में शरीक होते हैं।[18]

प्रेमचंद दहेज प्रथा के भी विरोधी हैं। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गोदान' आदि उपन्यासों में उन्होंने दहेज प्रथा के अभिशापों को बारीकी से दर्शाया है। वह कहते हैं– "दहेज बुरा रिवाज है, बेहद बुरा। मेरा बस चले तो दहेज लेने वाले और देने वाले दोनों को ही गोली मार दी जाय, फिर चाहे फांसी ही क्यों न हो जाए। पूछो, आप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं।"[19] ..."जब तक लेन–देन समाज में घृणा की दृष्टि से न देखा जायेगा और जनमत उसे जघन्य न समझने लगेगा तब तक यही दशा रहेगी।"[20]

प्रेमचंद के यही विचार उनके समूचे साहित्य जगत में भी दृष्टिगोचर होते हैं। अपनी कहानियों और उपन्यासों में नारी चरित्रों के माध्यम से उन्होंने नारी–मुक्ति आंदोलन को प्रखर स्वर प्रदान किया है। 'कुसुम' कहानी में वे लिखते हैं "पुरुष अगर स्त्री से उदासीन रह सकता है, तो स्त्री उसे क्यों नहीं ठुकरा सकती? वह दुष्ट समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को उसका गुलाम बना दिया। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता, कोई चूं भी नहीं कर सकता है कि स्त्री कुल मर्यादा के बंधनों में जकड़ी हुई है।"[21]

प्रेमचंद नारी को कर्मठ और आत्मनिर्भर देखना चाहते हैं, इसीलिए वे नारी शिक्षा की हमेशा वकालत करते है। 'गबन' में रतन से वकील पं. इन्द्रभूषण प्रश्न करवाते हैं– "आपके बोर्ड में लड़कियों की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा? जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार नहीं होगा।"[22] 'गोदान' में भी प्रो. मेहता के भाषण में भी प्रेमचंद ने स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता पर जोर दिया है। "मैं नहीं कहता देवियों को विद्या की जरूरत नहीं है, हैं और पुरुषों से अधिक है। स्त्री की विद्या और अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है।"[23]

स्त्रियों को संपत्ति का भागीदार बनाने के पक्ष में प्रेचंद का बयान पहले ही उद्धृत किया जा चुका है। उनका मत हम उनके साहित्य में भी पाते हैं। 'गबन' उपन्यास में वे कहते हैं "बहनों! किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना। जब तक अपना घर अलग न बना लो चैन की नींद मत सोना। यह मत समझो कि तुम्हारे पति के पीछे उस घर में तुम्हारा मान के साथ पालन होगा.... परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं, कांटों की शय्या है, तुम्हें पार लगाने वाली नौका नहीं, तुम्हें निगल जाने वाला जन्तु है।"[24]

यह एक निर्विवाद सत्य है कि इस रूढ़िगत और पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का व्यक्तित्व उनकी अस्मिता को कुचल कर रखा गया है। उसे भले ही देवी का दर्जा दे दिया गया हो, पर सत्य तो यही है कि समाज में उसकी हैसियत दासी के समान है।

स्त्री शोषण की जड़ विवाह–प्रथा है। प्रेमचंद रूढ़ हो चली विवाह प्रथा के भयानक परिणामों को देख रहे थे। समाज–विरादरी में 'लड़कियों' की शादी एक आवश्यक धर्म माना गया है। फिर दहेज के कारण आर्थिक तंगी और फिर उससे उपजे बाल–विवाह बेमेल विवाह, आदि–आदि। 'निर्मला' उपन्यास इस पूरी समस्या को तार्किक ढंग से पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। दहेज के अभाव में 'निर्मला' का विवाह उसके पिता के उम्र वाले सज्जन– मुंशी तोताराम से हो जाता है। मुंशी जी के, पहले से ही तीन लड़के थे। उनका बड़ा बेटा मंसाराम 'निर्मला' का हम उम्र है। 'निर्मला' बेमेल विवाह की शिकार बन जाती है। उसका पति यानि मुंशी तोताराम अपने बेटे और पत्नी निर्मला के आचरण पर शक करता है। निर्मला सर्वस्व न्यौछावर

कर संसार को बांधे रखना चाहती है, किन्तु वह ऐसा कर नहीं पाती है। बड़ा बेटा आत्म ग्लानि से दुनिया छोड़ देता है और धीरे–धीरे मुंशी तोताराम का पूरा परिवार टूटकर बिखर जाता है।

प्रेमचंद नारी को आत्मनिर्भर देखना चाहते थे। नारी अधिकारों के प्रति स्वयं नारी सचेत होकर हक की मांग करे। अपनी अस्मिता के प्रति खुद जागरुक बने। 'प्रेमा' की 'पूर्णा' को लीजिए, पूर्णा के सतीत्व पर कमलाचरण हमला करता है तो पूर्णा चंडी रूप धारण कर लेती है और उसे कुर्सी से घायल कर अपनी रक्षा करती है। इसके अलावा 'सुमन', 'सलोनी', 'मुन्नी', 'सुमित्रा', 'धनिया', 'पुष्पा, सुखदा आदि ऐसे चरित्र हैं जिनकों हम इस संदर्भ में उदाहरण स्वरूप उद्धृत कर सकते हैं।

प्रेमचंद पर टिप्पणी करते हुए जवरीमल्ल पारिख ने अपने लेख 'प्रेमचंद और नारी समस्या' में लिखा है, "अपने कथा साहित्य में प्रेमचंद ने नारी जीवन के हर पहलू को चित्रित किया है। उनके जीवन की प्रत्येक समस्या, उनके चरित्र का प्रत्येक पक्ष, उनमें विद्यमान साहस, त्याग, करुणा, दृढ़ता एवं संयम जैसे मानवीय गुणों के साथ–साथ ईर्ष्या, द्वेष, आभूषण–प्रियता, रूढ़िवादिता, धर्म भीरुता, अंधविश्वास जैसी दुर्बलताओं को भी चित्रित किया है।" प्रेमचंद के नारी पात्र मानों भारत वर्ष के नारी संघर्ष को दर्शाते हों। नारी मुक्ति पर लिखते हुए चन्द्रा पाण्डेय ने अपने लेख 'प्रेमचंद की रचनाएं, 'नारी मुक्ति के विविध स्वर' में लिखा है, "इन प्रयासों में विविध धरातलों पर नारी–मुक्ति के उभरते स्वरों को सुना जा सकता है। ये स्वर कभी सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति के संदर्भ में चक्कर काटने के लिए विवश नहीं है।"[25]

'मालती', 'सरोज', 'मीनाक्षी' ये सभी 'गोदान' के गौण पात्र हैं। सभी नारी–स्वतंत्रता के प्रति जागरुक दिखाई देती हैं। 'मीनाक्षी' (राय साहब की बेटी) अपने दुराचारी पति की हंटरों से खबर लेती है। 'सरोज' (मालती की बहन) 'कोर्ट मैरिज' करती है, साथ ही स्त्रियों को राजनैतिक अधिकार दिए जाने की मांग भी करती है। वह कहती है "हम पुरुषों से सलाह नहीं मांगती। अगर वह अपने बारे में स्वतंत्र हैं, तो स्त्रियां भी अपने विषय में स्वतंत्र हैं। युवतियां अब विवाह को पेशा नहीं बनाना चाहती। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।"[26]

कर्मभूमि की सुखदा विद्रोही स्वभाव की है। वह निम्नवर्ग के अधिकारों के लिए संघर्षरत है। न केवल संघर्षरत है, बल्कि वह विद्रोह को नेतृत्व भी प्रदान करती है।

समाज के शोषकों की ओर इंगित करती हुई वह कहती है ''एक दिन आएगा जब आज के देवता कल कंकड़–पत्थर की तरह उठा–उठाकर गलियों में फेंक दिए जायेंगे और पैरों से ठुकराए जायेंगे।''[27] कर्मभूमि में ग्रामीण लड़की मुन्नी को भी इस बात की समझ है कि अपने अपमानों का बदला औरतों को खुद ही लेना होगा। वह अपने बलात्कारियों की हत्या करके अपना बदला पूरा करती हैं। मुन्नी के पीछे पूरे गांववालों के रूप में दरअसल संपूर्ण देश खड़ा है। वह इस घटना का समर्थन करता है कि बलात्कारियों के साथ ऐसे ही बर्ताव होना चाहिए।

शिक्षा और संस्कृति से संबंधित सवाल– शरतचन्द्र

19वीं शताब्दी के आस–पास ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी नीतियों में परिवर्तन किया। कंपनी ने अपनी सुविधाओं के लिए भारत का आधुनिकीकरण करने का प्रयास आरंभ किया। इसके लिए उसने शिक्षा की आवश्यकता को समझा और देश भर में शिक्षा अभियान शुरू किया। बंगाल ने सरकार की इस नीति का स्वागत किया। 'नवजागरण' ने नवयुवकों में पहले ही चेतना भर दी थी, अतः शिक्षा की आवश्यकता को वे भी समझ रहे थे। शिक्षा के प्रसार में भी अंग्रेजों की एक अपनी नीति थी। इन्होंने भारतीय सभ्यता की आलोचना करना शुरू किया, ताकि औपनिवेशिक सत्ता द्वारा किए गए परिवर्तनों को स्वीकारोक्ति मिल सके। मिशनरियों ने यहां के धर्म, आचार विचारों पर तथा अंग्रेज बुद्धिजीवियों ने भारतीय सभ्यता पर अनेक आक्रमण किए। मिशनरियों ने अपने धर्म की श्रेष्ठता–प्रतिपादन से पहले यहां के धर्म को एकदम निकृष्ट घोषित किया। भारतीय धर्म अपने अंतर्विरोधों से घिरा हुआ तो था ही, साथ ही तमाम रूढ़ियों, अंधविश्वासों और कर्मकाण्डों से जकड़े होने के कारण जनता (लोगों का एक तबका) उनकी ओर आकृष्ट भी होती चली जा रही थी। किन्तु बुद्धिजीवियों के एक दूसरे तबके में इसकी तीखी प्रतिक्रिया हुई और इस प्रतिक्रिया ने उन्हें और भी अधिक धार्मिक बना दिया। इन लोगों ने मिशनरियों के विरुद्ध अपना अलग संगठन खड़ा किया और अपनी संस्कृति की विशेषताओं को लोगों के सामने रखने का प्रयास किया। ये लोग हमारे अतीत का गौरव–गान करके लोगों में आत्मविश्वास, आत्मबल का संचरण करना चाहते थे। ताकि नवयुवक अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता को समझे। लगभग इसी समय राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा प्रसार का कार्य अपने ऊपर लिया। भारतीय संस्कृति और नवयुवकों में जागरण की दृष्टि से उन्होंने ब्रह्म समाज की नींव रखी। वूड की सहायता से बंगाल के कोने–कोने में अंग्रेजी विद्यालयों और कालेजों की स्थापना की गई। "फरीदपुर जिले के अकेले मिदनापुर सब–डिवीजन में जितने स्कूल थे, उतने अगर जिला मुख्यालयों को छोड़ दें तो पूरे संयुक्त प्रांत में भी नहीं थे।"[28] धीरे–धीरे लोगों ने देशी भाषा में शिक्षा के प्रसार के महत्त्व को समझा और विदेशी भाषा के खिलाफ तथा देसी भाषा

के पक्ष में एक मुहिम चलाई गई। इसमें 'डेरोजियन विचारधारा' के कुछ लोग भी शामिल थे। "बंकिमचन्द्र ने बंग–दर्शन में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बाबुओं और जनसाधारण के बीच की बढ़ती हुई खाई का उल्लेख बार–बार बड़े चिंतातुर ढंग से किया।"[29] अन्य उल्लेखनीय लोगों में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति गुरुदास बंद्योपाध्याय, प्रफुल्लचंद रॉय, रमेन्द्रसुंदर त्रिवेदी तथा इन सबसे बढ़कर स्वयं कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मातृभाषा का प्रबल समर्थन किया। "शिक्षा हेरफेर" (1893) शीर्षक से एक ओजस्वी निबंध में रवीन्द्रनाथ ने इस रोचक विषय को उठाया।

शरतचन्द्र का आगमन राजा राममोहन राय की मृत्यु के लगभग 40 साल बाद होता है। शरतचन्द्र को अतीत के तमाम समाज सुधारक विरासत में मिले थे। राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज ने 'सिविल मैरिज कानून' (1892) के लिए संघर्ष किया और नारी को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। यह सब आधुनिक शिक्षा का ही प्रभाव था, जिससे समाज में क्रांति आ रही थी। 'समुद्र यात्रा' जैसे अंधविश्वासों को दरकिनार कर नवयुवक अब विदेश में जाकर शिक्षा अर्जन के लिए आतुर हो उठा।

शरतचन्द्र की शिक्षा–दीक्षा भी इसी क्रांति के वातावरण में संपन्न हुई। विद्रोही समाज सुधारक के पक्ष की ओर उनका झुकाव स्वाभाविक था। शरतचन्द्र के पात्र जैसे सतीश, श्रीकान्त आदि सभी विदेशी शिक्षा का अर्जन करने के लिए विदेश यात्रा कर चुके थे और 'समुद्र यात्रा' जैसे अंधविश्वास को तोड़ दिये थे। शरतचन्द्र ने यह महसूस किया कि इस कट्टरपंथी समाज में नारी सबसे अधिक पीड़ित है। सतीत्व और नारीत्व के सूक्ष्म भेद को उन्होंने परखा था। इसलिए शरतचन्द्र के नारी–पात्र शिक्षित, और सचेत हैं। त्याग, ममता के साथ–साथ उनमें बुद्धि और तर्क की भी प्रधानता है। रमा, कमल, आदि नामों का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है।

शरतचन्द्र के सामाजिक दृष्टिकोण की कुछ विशेषताएं हैं, उनमें से एक है भारतीय संस्कृति की महत्ता। शरतचन्द्र अंध पश्चिम भक्त नहीं थे, यथास्थान उन्होंने पश्चिमी सभ्यता की कड़ी आलोचना भी की है। शरतचन्द्र के अनुसार हमें विदेशी शिक्षा अर्जन करने मे कोई हर्ज नहीं होना चाहिए, विरोध वहां होना चाहिए जो जबर्दस्ती हम पर लादी जाए। विप्रदास का एक पात्र कहता है– "अपने भाषणों में अकसर कहा करता हूं कि रियल (वास्तविक) सॉलिड (ठोस) शिक्षा चाहिए।

धोखेबाजी, ठगी नहीं। आपको एक बार यूरोप आना चाहिए। वहां की जलवायु, वहां की फ्री एयर (मुक्त वायु) में सांस लिए बिना हृदय में फ्रीडम (स्वतंत्रता) नहीं आती। बुरे संस्कारों में मन मुक्त नहीं हो सकता। मैं पूरे पांच वर्ष तक उस देश में रहा हूं।''[30] शरतचन्द्र का मत स्पष्ट है कि हम स्वदेशी रहकर भी विदेशी शिक्षा का अर्जन कर सकते हैं। अतः शरतचन्द्र उस बंगाली भद्र लोक पर आक्रोश प्रकट करते हैं जो विदेशी शिक्षा का अध्ययन करते–करते स्वयं विदेशी हो चले हैं। वे ऐसी शिक्षण पद्धति के हिमायती हैं जो सर्वसुलभ हो। उन्हीं के शब्दों में ''दुख कभी न दूर होगा जब तक उस शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकती, जिससे देश का बर्हिमुखी वीत–श्रमपन फिर अंतर्मुखी और आत्मस्थ नहीं होता। क्या मन का मलन, क्या शिक्षा का मिलन, यह केवल बराबरी वालों के ही आदान–प्रदान से हो सकता है, इस तरह कंगालों की तरह, भिखमंगों की तरह कभी नहीं हो सकता। होने पर भी यह एक धोखेबाजी होगी। उसमें कल्याण नहीं होगा, गौरव नहीं होगा। इससे देश को केवल हीनता और लांछन ही मिलेगा, मुनष्यत्व कभी न मिलेगा।''[31] शरतचन्द्र भारतीय सभ्यता में पूरी तरह से विश्वास रखते थे, नारी की त्याग, करुणा, कल्याणी रूप को उन्होंने हमेशा महत्त्व दिया। संकीर्ण और स्वार्थी चरित्रों को वह कभी भी क्षमा नहीं कर पाये। विष्णु प्रभाकर जी ने शरतचन्द्र पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही लिखा है ''वे (शरतचन्द्र) धर्म के नहीं, धार्मिक पाखण्ड के विरोधी थे। वे परिवार को नहीं, परिवार में फैले छद्म को हटाने वाले थे। विवाह के लिए संस्कार की नहीं, प्रेम की शर्त मानते थे। वे सत्य को शास्त्र के ऊपर स्वीकार करते थे। उनकी दृष्टि में प्रेम ही मानों संस्कृति और सभ्यता का मूलतत्त्व, प्रेरणा और लक्षण है। इसीलिए वे अपने संसार को, अपने पात्रों को, प्रेम करते थे। प्रेम के बिना अंतरंग जानकारी नहीं मिल सकती। उनके अनुभव का आधार अनासक्ति नहीं, आसक्ति है, पर उनके चित्रण में, उसे कला का रूप देने में वे निःसंगता से काम लेते हैं।

शिक्षा और संस्कृति से संबंधित सवाल– प्रेमचंद

शरतचन्द्र की तरह प्रेमचंद भी भारतीय शिक्षण पद्धति और संस्कृति से प्रभावित थे। यद्यपि प्रेमचंद के अनुसार भी विदेशी शिक्षा की अच्छाई को ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है। किन्तु संस्कृति के मामले में वे भारतीय संस्कृति से ही अधिक प्रभावित थे।

अंग्रेजी शिक्षण पद्धति के प्रति प्रेमचंद के अप्रभावित होने के कुछ कारण भी थे। इनमें से एक है– अंग्रेजों की धूर्त नीति। प्रेमचंद इस बात को समझ रहे थे कि अंग्रेज भारत को शिक्षित करने की दृष्टि से शिक्षा का प्रसार नहीं कर रहा है, बल्कि उन्हें दफ्तरों में दिन–रात काम करने वाले नौकर चाहिए। प्रेमचंद कहते हैं– "अंग्रेजी राज्य में नये–नये विद्यालय खुले मगर उनका आदर्श और उद्देश्य कुछ और था। वह दफ्तरी शासन का एक विभाग मात्र था जिसका उद्देश्य सत्य की खोज और संस्कृति का विकास नहीं, दफ्तरों के लिए कर्मचारियों का निर्माण था। वहां की पुस्तकों पर, शिक्षाविधि पर, अंग्रेजी राज की छाप थी। छात्रों के आत्मसम्मान को कुचला जाता था। कोई दुकानदारी थी जहां पग–पग पर छात्रों से कुछ वसूल करने की फिक्र रहती है। जुर्मानों का भाव गर्म है। हाजिर न हो सको तो जुर्माना दो, देर में आओ तो जुर्माना, शरारत करो तो जुर्माना, सबक याद न हो तो जुर्माना, दर्जनों तरह की फीस पढ़ाई की फीस, पुस्तकालय की फीस, साइंस की फीस, इम्तहान की फीस, रोशनाई की फीस। ऐसी संस्थाओं के छात्रों से यह आशा करना कि वह राष्ट्र की कोई सेवा करें दुराशामात्र है। उनकी तो आत्मा कुचली जा चुकी है।"[32]

प्रेमचंद शिक्षा के व्यवसायीकरण का कड़ा विरोध करते हैं। शिक्षा को वर्ग संकुचित करने के स्थान पर वे शिक्षा को सर्वसुलभ करने पर ज्यादा जोर देते थे। आगे प्रेमचंद इसी लेख में शिक्षक की अवस्थाओं पर भी टिप्पणी करते हैं। प्रेमचंद की नजरों से देखें तो भारतीय शिक्षक और अंग्रेजी शिक्षक में व्यापक अंतर है। "... यहां हमारे वाइस चांसलर साहब साढ़े तीन हजार रुपए महीना वेतन पाते हैं। कितना शानदार आपका बंगला है, कितनी अच्छी–अच्छी मोटरें हैं, कितने स्टाइल में रहते हैं। प्रिंसिपल साहब का वेतन भी लगभग दो हजार है। उतना शानदार बंगला तो आपका

नहीं है, पर आप सिगार ज्यादा कीमती पीते हैं। लेडियों में आपकी ज्यादा पहुंच है। घुड़दौड़ के शौकीन हैं ही। प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर, डीन, ट्यूटर, डिमांस्ट्रेटर, गरज ऊपर से नीचे तक वही शान, वही नमूना, वहीं ठाट।''[33] इसके विपरीत प्रेमचंद भारतीय परंपरा का गुणगान करते हैं। ''प्राचीन प्रथा की तरफ आंखें उठाइए। कुलपति हैं, वह ज्ञान की मूर्ति, विद्या का भण्डार, जमीन का सर्द–गर्म चखे हुए और संसार के प्रलोभनों से ऊंचा उठा हुआ। अध्यापक भी उसी सांचे में ढले हुए, कहीं आडम्बर नहीं, कभी मिथ्याभिमान नहीं। वहां शान इसमें नहीं कि कौन कितना व्यसनी है, किसके पास कितने अच्छे कुत्ते हैं या कौन सिनेमा ज्यादा देखता है, बल्कि इस बात में कि किसमें ज्यादा लाग है, किसमें ज्यादा भक्ति या विद्वता है, कौन ज्यादा स्वावलंबी है, किसमें सेवा और सहायता का भाव अधिक है। दोनों आदर्शों में कितना अंतर है।''[34] प्राचीन आदर्शों से प्रेमचंद बहुत प्रभावित थे। कदाचित इन्हीं कारणों से उन्होंने स्वामी श्रद्धानंद की काफी प्रशंसा की है। वे कहते हैं ''यों तो स्वामीजी प्राचीन आर्य आदर्शों के पूर्ण रूप से प्रवर्तक थे पर मेरे विचार में राष्ट्रीय शिक्षा के पुनरूत्थान में उन्होंने जो काम किया है उसकी कोई नजीर नहीं मिलती।''[35] प्रेमचंद विज्ञान की शिक्षा के महत्त्व को भी समझ रहें थे। इसलिए प्रेमचंद अंग्रेजों द्वारा लायी गई विज्ञान की शिक्षा का स्वागत करते हैं। ''अंग्रेजों के आने और उनके शासन के स्थापित हो जाने के बाद भारतीयों को पश्चिमी ज्ञान विज्ञान से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ। परम उन्नत अंग्रेज जाति के सान्निध्य में आकर हिन्दू– जाति ने यदि अपनी दयनीयता से उपर उठने का प्रयास किया तो यह प्रकृत ही था।''[36]

जाति–पाति और दलित प्रश्न– शरतचन्द्र

जाति प्रथा मध्ययुगीन सामंती समाज की देन है। इससे पूर्व दास प्रथा के अंतर्गत केवल वर्ण थे, जातियां नहीं। मध्ययुग में जात–पात को ईश्वरीय विधान के रूप में स्वीकृति दे दी गयी। इस सिद्धांत के अनुसार ऊंच–नीच जाति, इत्यादि को जन्म के कर्मों से जोड़ दिया गया। यानि जो पिछले जन्म में अगर अच्छे कर्म किए होंगे तो उच्च कुल में पैदा होंगे और अगर बुरे कर्म किए हों, तो नीच कुल में। इसके अंतर्गत इस बात को मान्यता दे दी गयी कि वह लोग जो समृद्ध घराने में जन्मे हो वह उनके पूर्व जन्म के अच्छे परिणामों का परिणाम है और जो गरीब घरों में जन्में तो वह उसके बुरे कर्मों का परिणाम है। इस प्रकार सामंती समाज ने जातिगत व्यवस्था को एक नया अर्थ प्रदान किया।

बंगाल में ब्राह्मण, कायस्थ और वैद ये तीन उच्च जाति मानी गयी हैं। इसके अतिरिक्त 43 अन्य जातियों का भी वर्णन है। उदाहरणार्थ– तांती, जुगी, मछुआरा (जेले), बागाल (ग्वाला), चासी, कोल आदि। प्रत्येक जाति अपने से नीच जाति का शोषण करती थी। क्षितिमोहन सेन ने लिखा है– "सन 1908 में शांतिनिकेतन में स्पर्शास्पर्श का विचार नहीं था। हाड़ी, डोम आदि जाति के नौकरों के हाथ का खाना सब खाते थे। एक दिन एक क्रिया के उपलक्ष्य में मेरे घर कई गरीब मोचियों ने भात मांगा। उन दिनों अकाल था। मैंने आज्ञा दे दी पर नौकर उन्हें घर में घुसने नहीं देना चाहते थे। परन्तु हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब मेरे हाड़ी, डोम जातीय भृत्यों ने यह कहकर कि रंधनशाला का सब अन्न अपवित्र हो गया है, उस दिन कुछ नहीं खाया।"[37] इससे पता चलता है कि भारत में नीच वर्ग के लोग भी ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रसित थे।

शरतचन्द्र ऐसे जाति आधारित सामाजिक बंधनों का विरोध करते हैं, साथ ही इन बंधनों के प्रति विद्रोह भी। "शरतचन्द्र के अनुसार मनुष्य की प्रतिभा उसकी पहचान होनी चाहिए न कि उनका जन्माधार। शरत मानवता की इस लांछना को डॉ. प्रियनाथ मुखर्जी (ब्राह्मण की बेटी) के माध्यम से उभारते हैं। उनकी अगाध सहानुभूति मिलती है। 'देना पावना' में कुलटा मां की बेटी शोडशी को, 'चन्द्रनाथ' की सरयू को,

जो मानवीयता में कहीं कम नहीं। कमल का जन्म वृत्तांत सामाजिक दृष्टि से गौरवपूर्ण नहीं, उसके एकाधिक विवाह की कहानी भी समाज समर्थित नहीं, फिर भी धर्मनिरपेक्ष मानवतावादी शरत के हाथों कमल नूतन युग धर्म की प्रवक्ता बन जाती है। अभया अपनी भावी संतान को मनुष्य बनाकर यह सिद्ध करने की आशा रखती है कि जन्म नहीं, कर्म ही मनुष्य का सच्चा परिचय होगा। भविष्य की आशा के इसी सत्य के ऊपर अपने साहित्य बोध को खड़ा करके शरत निसंदेह अपने समय का अतिक्रमण करके हमारे और भावी युगमण्डल तक पहुंच गए हैं।''[38]

शरतचन्द्र समाज को वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं। समाज की रीति–नीति, धर्म, कर्म इत्यादि दैवीय नहीं बल्कि मानव रचित है। अतः समय सापेक्ष यह आलोचनीय भी है।'चरित्रहीन' की किरणमयी कहती है– ''कोई भी धर्मग्रंथ कभी अभ्रांत सत्य नहीं हो सकता। वेद भी धर्मग्रंथ हैं, अतएव उनमें भी मिथ्या का अभाव नहीं है।'' धर्म पर शरतचन्द्र के मत को 'पथ के दावेदार (पथेरदाबी') में सव्यसाची के वक्तव्य के माध्यम से साफ समझा जा सकता है– ''सभी धर्म मिथ्या हैं, आदिम दिन के कुसंस्कार हैं। विश्व मानवता का इतना बड़ा शत्रु और कोई नहीं है।''

शरतचन्द्र दलितों के प्रति सहानुभूति रखते हैं। उन्होंने 'श्रीकांत' तृतीय पर्व में डोम–धरकारों के जीवन के बारे में गहरी सहानुभूति से लिखा है तथा सहृदयता से उनका वर्णन किया है। अपने संपूर्ण साहित्य में म्लेच्छों की मनुष्यता और उच्च जातियों की हृदयहीनता, पाखण्ड, खोखलेपन को रेखांकित किया है। 'ब्राह्मण की बेटी' में दूले की लड़की के वस्त्र का कुछ हिस्सा हवा से छू जाने मात्र से रासमणि अपवित्र हो जाती है, पर गोलोक के जघन्य असामाजिक अपराधों में सहायता करने में वह तनिक भी संकोच नहीं करती है। 'देना पावना' के 'चण्डी मंदिर से लाभ हड़पने को लालायित जनार्दन राय को अछूत सागर सरदार टक्कर देता है। उसका साहस देखने योग्य है। ''भले ही वे अछूत हों, भले ही ये डाकू हों, जब तक देख पड़े तब तक षोड़षी स्तब्ध विस्मय से अवमानित अधः पतित बंगदेश के उन दोनों स्वस्थ, निडर और परम शक्तिशाली पुरुषों की ओर एकटक देखती रही।''[39]

शरतचन्द्र समाज को आधुनिक दृष्टि से देखते हैं। डॉ. श्याम सुन्दर बनर्जी शरतचन्द्र पर बड़ी ही सटीक टिप्पणी करते हैं ''धर्ममुखी अथवा प्रचलित समाज विधानमुखी साहित्य वृत्ति से बंगला साहित्य का उद्धार करके शरत मुक्त मानवतामुखी साहित्य चिन्ता का जो स्रोत पथ खोल देते हैं उसी पर चलना आधुनिक काल के साहित्य का धर्म है।''[40]

जाति–पाति और दलित प्रश्न– प्रेमचंद

जाति–व्यवस्था आज भी हमारे समाज का एक बड़ा सच है। प्रेमचंद के समक्ष सामंती समाज अपने क्रूरतम रूप में खड़ा था। उच्च वर्ग सदियों से भारत की सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम किये हुए था। गरीब किसान, मजदूर तथा अछूत और स्त्रियों पर शोषण जारी था। शोषितों द्वारा बनाये गये अंधविश्वास (जैसे– पाप–पुण्य, स्वर्ग, नरक, पुर्नजन्म, आदि) अपना असर बिखेर रहे थे। शोषकों के लिए एक बड़ी जीत यह थी कि उन्होंने शोषितों को 'कथ्य' को 'तथ्य' रूप में स्वीकारोक्ति दिलाई। भगवान को मंदिरों में ही कैद कर दिया गया, प्रचंड आग्रह होने के बावजूद निम्न वर्ग को वहां से दूर रखा गया। अछूत मानी जानी वाली जातियां सर्वाधिक शोषित व पीड़ित थी, अतः इन तबकों पर प्रेमचंद जैसे सचेत लेखक का ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था, खास तौर पर एक ऐसे युग में जबकि अछूत समस्या पूरे देश के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के लिए एक जबर्दस्त चुनौती बन गई थी।

प्रेमचंद के समय में डॉ. अंबेडकर दलितों के राष्ट्रीय नेता के रूप में संघर्षरत थे तथा महात्मा गांधी राष्ट्रीय स्तर पर दलित आंदोलन को नेतृत्व प्रदान कर रहे थे। प्रेमचंद के लेखन से पता चलता है कि वह दलित आंदोलन के मामले में डॉ. अंबेडकर से अधिक महात्मा गांधी से प्रभावित थे। प्रेमचंद लिखते हैं "अब हमारा क्या कर्तव्य है? यों ही भाग्य को रोककर, अपने कुदिन को कोसकर, बैठे रहेंगे? कदापि नहीं। महात्मा जी के इस वज्रनिर्घोष ने सारे देश में तहलका मचा दिया है। घर–घर में यही चर्चा है। समस्त देश एक स्वर से कह रहा है– हम राष्ट्र की इस आशा को, यों बलिवेदी पर न चढ़ने देंगे। हम अपने उन अछूत भाइयों को जो हमसे रूठ गए हैं, मनाएंगे, उनके चरणों पर गिरकर मनाएंगे। हमें विश्वास है डॉ. अंबेडकर और श्रीनिवासन भी राष्ट्र की इस याचना को अस्वीकार न करेंगे। हमारी नौका को भंवर से निकालकर पार ले जाने वाला अकेला गांधी है। उसी में वह सामर्थ है, वह देवत्व है, वह ऐश्वर्य है। हमें विश्वास है वह ईश्वर के दरबार से हमारे उद्धार का बीड़ा

लेकर आया है, हम उस दिन का इंतजार कर रहे हैं, जब वह स्वाधीनता का वरदान लाकर जीर्ण और निराश माता की भेंट करेगा।''[41]

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेमचंद गांधी में अटूट श्रद्धा और उनकी दृष्टि में अटूट विश्वास रखते थे। इन्हीं कारणों से प्रेमचंद 'दलित विमर्शों' के घेरे में भी आ गए। दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मिकि ने तो प्रेमचंद को अंतर्विरोधों का 'पुतला' ही बना दिया। ''नागपुर में आयोजित हिन्दी दलित लेखक साहित्य सम्मेलन (21–22, अक्टूबर, 1993) में अपने अध्यक्षीय भाषण में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहा 'प्रेमचंद ने दलित चेतना की कई महत्वपूर्ण कहानियां लिखी हैं, 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआं', 'दूध का दाम' आदि। लेकिन अंतिम दौर की कहानी 'कफन' तक आते–आते वे गांधीवादी आदर्शों, सामंती मूल्यों, वर्ण–व्यवस्था के पक्षधर दिखाई देते हैं। एक अंतर्द्वन्द्व है उनकी रचनाओं में, एक ओर दलितों से सहानुभूति दूसरी ओर वर्ण–व्यवस्था में विश्वास।''[42] आलोचक चाहे कुछ भी सिद्ध करने पर तुले हों, प्रेमचंद की वास्तविक दृष्टि तो हमें उनके लेख और भाषणों से ही मिल सकती हैं। धार्मिक अंधविश्वास से ग्रसित भारतीय समाज को प्रेमचंद भी देख रहे थे। ब्राह्मणवाद पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है ''राष्ट्रवाद ऐसे उपजीवी समाज को घातक समझता है और समाजवाद में तो उसके लिए स्थान ही नहीं और हम जिस राष्ट्रीयता का स्वप्न देख रहे हैं, उसमें तो जन्मगत वर्णों की गंध तक न होगी, वह हमारे श्रमिकों और किसानों का साम्राज्य होगा, जिसमें न कोई ब्राह्मण होगा, न हरिजन, न कायस्थ, न क्षत्रिय। उसमें सभी भारतवासी होंगे, सभी ब्राह्मण होंगे या सभी हरिजन होंगे।''[43]

अपने उपन्यासों और कहानियों में प्रेमचंद ने जाति–पाति, छुआछूत आदि की जमकर आलोचना की है। ये भावनाएं कोढ़ की तरह भारतीय समाज के जड़ों को खोखला कर रहा है। 'प्रतिज्ञा', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमी' तथा 'गोदान' आदि ऐसे कुछ उपन्यास है जिनमें प्रेमचंद ने अछूतों की समस्या को उभारा है।

'रंगभूमि' का नायक सूरदास जाति का चमार है। किन्तु नीच जाति का होने पर भी वह गांववालों के दिलों में छाया हुआ है। प्रेमचंद लिखते हैं, ''संध्या समय प्रीत–भोज हुआ। छूत और अछूत एक साथ बैठकर एक ही पंक्ति में खाना खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बड़ी विजय थी।''

'प्रेमाश्रम' में भी अछूत समस्या को दिखाया गया है। ज्ञानशंकर का भाई प्रेमशंकर ज्ञानार्जन कर विदेश से लौटने के बाद अछूत घोषित कर दिया जाता है। स्वयं ज्ञानशंकर प्रेमशंकर से हिचकिचाता है। प्रेमशंकर, इस पर खेद प्रकट करता है। "...पर खेद है कि तुम इतने विचारशील होकर बिरादरी के गुलाम बने हुए हो। शिक्षा का फल यह होना चाहिए कि तुम बिरादरी के सूत्रधार बनो, उसको सुधारने का प्रयास करो न कि उसके दबाव में आकर अपने सिद्धांतों का बलिदान कर दो।"[44]

प्रेमचंद के समय में समाज एकाधिक स्तर पर स्वाधीनता के लिए संघर्षरत था। राजनैतिक स्वाधीनता तो युग की मांग थी ही, साथ ही समाज में फैली जर्जरता, रूढ़िवादिता, आदि को कैसे लेखक अनदेखा कर सकता था। 'दलित' और स्त्री' की मुक्ति भी युगीन समाज का एक विशाल प्रश्न था। 'कर्मभूमि' तक आते–आते प्रेमचंद के सामाजिक मुक्ति का प्रश्न और अधिक महत्त्व धारण कर लेता है। उपन्यास का नायक साफ शब्दों में कहता है कि "मैं जात–पात नहीं मानता माताजी, जो सच्चा है वह चमार भी है तो आदर जोग है, जो दगाबाज हो, झूठा हो, लम्पट हो वह ब्राह्मण भी है तो आदर जोग नहीं है"[45] 'कर्मभूमि' में तो अछूतों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है, युगीन सामाजिक अत्याचार को प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' में अवतरित किया है। जहां निम्न वर्ग के बच्चों तक को बराबरी के मौके से वंचित होना पड़ता है। उपन्यास का नायक अमरकांत निम्नवर्ग के बालकों से पूछता है "कहां पढ़ने जाते हो?" बालक ने नीचे का होंठ सिकोड़ कर कहा "कहां जायें, हमें कौन पढ़ाएगा? मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा हम लोगों को लेकर गये। पंडित जी ने नाम लिख लिया पर हमें सबसे अलग बैठाते थे, सब लड़के हमें 'चमार–चमार' कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटा लिया।"[46]

'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने यह दिखाया है कि कर्म के आधार पर कोई छोटा या बड़ा नहीं होता है। "चमार अगर चमड़े का काम भी करता है तो इसमें कोई बुराई नहीं हैं.....चमड़ा बनाना–बेचना कोई बुरा काम नहीं है।"[47] कर्मभूमि में छूआ– छूत का एक और रूप निम्न वर्ग के मंदिर–प्रवेश को लेकर देखने को मिलता है। समाज के निम्न वर्ग को मंदिर प्रवेश करने से रोका जाता है। उनके साथ मार–पीट की जाती है।. " यह लोग भगवान् की कथा सुनने आते हैं कि अपना धर्म भ्रष्ट करने आते हैं? भंगी, चमार जिसे देखो घुसा चला आया है। ठाकुर जी का मंदिर न हुआ सराय हुई..

.. ये दुष्ट रोज यहां आते थे, रोज सबको छूते थे। इनका छुआ हुआ प्रसाद लोग रोज खाते थे। इससे बढ़कर अनर्थ और क्या हो सकता है?''[48] ''... धर्मात्माओं के क्रोध का पारावार न रहा। कई आदमी जूते ले–लेकर उन गरीबों पर पिल पड़े। भगवान के मंदिर में, भगवान के भक्तों के हाथों, भगवान के ही भक्तों पर पादुका प्रहार होने लगा।''[49] डॉ. शांति कुमार के जरिए प्रेमचंद ने ऐसे पाखंडियों को चुनौती दी है ''अंधे भक्तों की आंखों में धूल झोंककर यह हलवे बहुत दिन खाने को न मिलेंगे महाराज, समझ गये? अब वह समय आ रहा है, जब भगवान भी पानी से स्नान करेंगे। दूध से नहीं।''[50] जो व्यक्ति अछूत का नाम सुनते ही जूते लेकर दौड़े थे उनके ऊपर भी प्रेमचंद ने बड़ी सटीक टिप्पणी की है। ''श्रोताओं की संख्या बहुत कम हो गयी थी। मधुसूदन जी ने बहुत चाहा कि रंग जमा दें, पर लोग जम्हाइयां ले रहे थे और पिछली सफों में तो लोग धड़ल्ले से सो रहे थे। मालूम होता था कि मंदिर का आंगन कुछ छोटा हो गया है, दरवाजे कुछ नीचे हो गये हैं।''

धीरे–धीरे आंदोलन वृहद रूप धारण कर लेता है। शूद्रों को प्रो. शांति कुमार के रूप में एक बुद्धिजीवी मार्गदर्शक मिल जाता है, और अंततः ठाकुरद्वारे का दरवाजा सबके लिए खुल जाता है।

'गोदान' में चमारों के माध्यम से प्रेमचंद ने मातादीन तथा दातादीन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है। ''वाह पंडित खूब निआव करते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गई होती और तुम इस तरह की बातें करते, तो देखती। चमार हैं इसलिए हमारी कोई इज्जत नहीं।... तुम बड़े नेमी–धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी नहीं पियोगे।''[51] 'गोदान' में सिलिया चमारिन एक प्रखर चरित्र है। यहां शूद्र कमजोर बनकर नहीं बल्कि सबल बनकर हमारे सामने आते है। सिर्फ सिलिया ही नहीं दरअसल पूरा निम्न वर्ग आंदोलित हो चुका है। सिलिया का पिता हरबू का संवाद इस बात का प्रमाण है। ''... झगड़ा कुछ नहीं है ठाकुर, हम आज या तो मातादीन को चमार बनाके छोड़ेंगे या उनका अपना रक्त एक कर देंगे।.... तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं।.... हमारी इज्जत लेते हो अपना धरम हमें दे दो।''[52] आगे चमारों ने मातादीन को पकड़कर जबरदस्ती उसमें मुंह में एक हड्डी का टुकड़ा डालकर उसका धर्म भ्रष्ट कर

देता है। सिलिया को अंततः धनिया आश्रय देती है, वहीं वह मातादीन के पुत्र को जन्म देती है।

प्रेमचंद के अछूत पात्र निडर होकर अपना संघर्ष स्वयं लड़ते हैं और सफलता प्राप्त करते हैं। प्रेमचंद ने अपने दलित पात्रों को ऐसी जुबान दे दी है जिससे वह अब किसी के साथ तर्क–वितर्क कर सकता था। अपनी भावनाओं और पीड़ा को स्वयं ही व्यक्त कर सकता था।

शरतचन्द्र और प्रेमचन्द मूलत सामाजिक रचनाकार हैं। इनकी प्रत्येक रचनाओं में हम किसी न किसी सामाजिक समस्या से परिचित होते हैं। भारतीय समाज में एक साथ 'सामंतवाद', 'साम्राज्यवाद', और 'पूंजीवाद' तीनों अपना प्रभाव दिखा रहा था। इन दोनों लेखकों ने जाति–पाति, शिक्षा, दलित, और स्त्री जैसी तमाम रुढ़िगत समस्याओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया हैं।

शरतचन्द्र और प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम ऐसे पात्र पाते हैं जो उपरोक्त समस्याओं से जुझ रहे हैं। 'प्रतिज्ञा' 'कर्मभूमि' 'गोदान' (प्रेमचन्द) और 'परिणिता' 'श्रीकांत' 'देवदास' 'पथ के दावेदार'(शरतचन्द्र) आदि ऐसे उपन्यास हैं जिसमें हम जातिगत और कुलीनता की समस्यायों को देखते हैं। 'कर्मभूमि', और 'शेषप्रश्न', में शिक्षा की समस्यायो को उठाया गया है तथा 'निर्मला', 'प्रेमाश्रम' (प्रेमचन्द) 'चरित्रहीन' 'बड़ी दीदी' 'विराजबहू', 'लेन–देन' (शरतचन्द्र) आदि उपन्यासों में हम स्त्री जीवन की नाना समस्याओं को पाते हैं। कर्मभूमि', 'गबन' 'गोदान' 'रंगभूमि',जैसे उपन्यासों में प्रेमचन्द ने दलित समस्या को भी रेखांकित किया है। दूसरी ओर शरतचन्द के यहां 'दलित समस्या' उस तरह से उद्घाटित नहीं हुई है, जिस तरह हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में देखते हैं।

स्त्री जीवन से संबंधित जटिल समस्याओं का उद्घाटन करने में शरतचन्द को महारत हासिल है। दूसरी ओर प्रेमचन्द के उपन्यासों में हम सभी समस्याओं का मिला–जुला रूप पाते है।

---

[1] शरत निबंधावली, स्वराज्य साधना में नारी, पृ. 13

[2] विष्णु प्रभाकर आवारा मसीहा, पृ. 253

[3] डॉ. कुन्तल कुमारी, श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा एवं शरतचन्द्र के नारी पात्र : एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 163,

[4] शरत पत्रावली, पृ. 55

[5] शरतचन्द्र, शेष प्रश्न, पृ. 219
[6] शरत पत्रावली, पृ. 66
[7] नारी का मूल्य, पृ. 9
[8] शरतचन्द्र ,चरित्रहीन, पृ.332
[9] शरत निबंधवाली, पृ. 64
[10] शरत निबंधवाली, पृ. 94
[11] डॉ. सरोज प्रसाद, प्रेमचंद के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन
[12] प्रेमचंद , प्रेमचंद कुछ विचार, भाग–2, पृ. 175
[13] सं. अमृतराय,प्रेमचंद, विविध प्रसंग, भाग–3, पृ. 264
[14] संपादकीय हंस, फरवरी 1931
[15] सं. अमृतराय, विविध प्रसंग, भाग–3, पृ. 250 संपा. हंस, फरवरी, 1931
[16] सं. अमृतराय, विविध प्रसंग, भाग–3, संपादकीय जागरण, मार्च, 1933 पृ. 290
[17] (वही, पृ. 250
[18] संपा. हंस, मई 1932 (प्रेमचंद रचनावली भाग–8, अध्य. जाबिर हुसैन एवं संपा. मण्डल, पृ. 39)
[19] प्रेमचंद गोदान, पृ. 276
[20] प्रेमचंद निर्मला, पृ. 41
[21] प्रेमचंद मानसरोवर भाग–2, पृ. 10
[22] प्रेमचंद गबन, पृ. 203
[23] प्रेमचंद गोदान, पृ. 165
[24] प्रेमचंद गबन, पृ. 266
[25] सं. स्व्यसाची, उत्तरार्द्ध : अप्रैल, 1980, प्रेमचंद अंक, पृ. 108
[26] प्रेमचंद गोदान, पृ. 164
[27] प्रेमचंद कर्मभूमि, पृ. 152
[28] सुमित सरकार, अनु. आदित्य नारायण सिंह, बंगाल में स्वदेशी आंदोलन, पृ. 124
[29] वही, पृ. 126
[30] शरतचंद्र, विप्रदास, पृ. 32–33 रचनावली 7, सं. सुनील त्रिवेदी
[31] रचनावली–7, पृ. 269–230
[32] सं. निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका,प्रेमचंद रचना संचयन, पृ. 746
[33] सं. निर्मल वर्मा और कमल किशोर गोयनका,प्रेमचंद रचना संचयन, पृ. 747
[34] वही, पृ. 747
[35] वही, पृ. 746
[36] डॉ. सरोज प्रसाद, प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिफलन– पृ83
37 भारत वर्ष में जाति, भेद', पृ. 103
[38] सविता सक्सेना, शरत और प्रेमचंद की कथा साहित्य में सामंतवाद विरोधी पहलू'' पृ. 170
[39] सं. विश्वनाथ मुखर्जी, शरत समग्र–3, पृ. 80
[40] उत्तरकाल शरत, पृ.60
[41] प्रेमचंद विविध प्रसंग, पृ. 440
[42] 'अंगुत्तर' पत्रिका, अंक एक, 1993, नागपुर, पृ. 16
[43] सं. सव्यसाची,उत्तरगाथाः अंक 6–7, पृ. 2
[44] प्रेमचंद प्रेमाश्रम, पृ. 115
[45] प्रेमचंद, 'कर्मभूमि', पृ. 82
[46] प्रेमचंद कर्मभूमि, पृ. 84–85
[47] कर्मभूमि, पृ. 99
[48] प्रेमचंद कर्मभूमि, पृ. 113–114
[49] प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ. 114
[50] प्रेमचंद, कर्मभूमि, पृ. 115
[51] प्रेमचंद, गोदान, पृ. 245
[52] प्रेमचंद, गोदान, पृ. 245